வேதாந்தம்
வழி நூல்கள்
உபதேசாம்ருதம்



20-4

उपदेशामृत



३

-सुधाकर-

ओ३म्

उपदेशामृत

तीसरा भाग

—❀—

(पाँचवीं कक्षा के लिये)

लेखक

[illegible] सुधाकर एम० ए०

प्रकाशक

शारदामन्दिर लिमिटेड
नई सड़क, दिल्ली

दूसरा संस्करण] सं० १९९२ वि० [मूल्य ।)॥

प्रकाशक

शारदामन्दिर लिमिटेड

नई सड़क, दिल्ली.

मुद्रक

रघुनाथप्रसाद वर्मा

नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग।

वक्तव्य

उपदेशामृत के प्रस्तुत भागों में बच्चों को वेद की शिक्षा के निकट लाने की कोशिश की गई है, जिससे उनमें सदाचार, सच्चरित्रता की नींव दृढ़ हो। इस निमित्त वेदमन्त्र अथवा उनके अंश देकर बच्चों का ध्यान उन आदर्शों की ओर खींचा गया है, जो उनको उभारनेवाले तथा उन्नत करनेवाले हैं।

धार्मिक शिक्षा तभी सफल हो सकती है, जब उसका ध्येय बच्चों को उत्तम नागरिक अथवा मनुष्य-समाज का उपयोगी सदस्य बनाना हो। इसी ध्येय को सामने रखकर 'उपदेशामृत' के सब भाग लिखे गये हैं।

'उपदेशामृत' का यह दूसरा संस्करण है। पहले संस्करण को आर्य जनता ने बहुत पसन्द किया था। इस संस्करण को अधिक उन्नत, आकर्षक तथा परिवर्धित रूप में पेश किया जा रहा है।

—सुधाकर

अध्यापकों के प्रति

धार्मिक शिक्षा के प्रति बच्चों की उदासीनता का मुख्य कारण यह होता है कि हम धर्म के मौखिक शिक्षण पर अधिक बल देते हैं। परन्तु धर्म का जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब हम बच्चों को धार्मिक शिक्षा देते हैं, तब वे हमारे जीवन की ओर देखते है। जो कुछ हम उनको पढ़ाते हैं, उसको वे हमारे जीवन में घटा हुआ देखना चाहते हैं। अतः धर्म की शिक्षा देने वाले अध्यापक-वर्ग की बड़ी भारी जिम्मेदारी है।

धर्म की मौखिक शिक्षा देते समय आप अपने जीवन को उसका प्रमाण बनाइये, ताकि जो कुछ आप पढ़ाएँ उसका समर्थन आपके अपने जीवन से होता रहे। इस प्रकार पढ़ाया हुआ पाठ विद्यार्थियों के जीवन को उन्नत करने वाला सिद्ध होगा।

उपदेशामृत में मैंने इस बात का भी पूरा ध्यान रक्खा है कि प्रतिपादित शिक्षा की शैली से बालकों में स्वयं विचार करने की शक्ति पैदा हो, और वे **"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे"** के महत्व को समझें।

—लेखक

20-4

उपदेशामृत

[३]

—:※:—

पुकार

मेरे दिल के राजा !

इस अन्धेरी दीन कुटी में अपनी जोत जगा जा।

(१)

लेते नाम, बहे नयनों से, प्रेमभरी जलधारा,
चहुँ दिस देखूं राह तुम्हारी एक बार तो आ जा।
मेरे दिल के राजा !

(२)

नील गगन में, अवनि सिन्धु में गूंजे तान तुम्हारी,

इस बेसुर मुरली पर अपनी इक तो तान चढ़ा जा।
मेरे दिल के राजा !

(३)

उठें उमङ्गें चाहभरी नित, करें मुझे मतवारा,
प्यारे, पल पल की तड़पन को कुछ तो आन बुझा जा।
मेरे दिल के राजा !

(४)

उजड़ चुकी है सुन्दर मेरी माता की फुलवारी,
अमृतमय जल करुणास्यन्दित बरसा जा, सरसा जा।
मेरे दिल के राजा !

—

20-1

पहला उपदेश

तेज और बुद्धि

ओ३म् भूर्भुवःस्वः ।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

आनन्दस्वरूप परमात्मा के तेज का हम ध्यान करते हैं। वह हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग पर लाए।

जिस बात का हम सदा ध्यान करते हैं, उसे शनैः शनैः धारण कर लेते हैं। परमात्मा के तेज का ध्यान करने से हम तेजस्वी बन सकते हैं। परन्तु परमात्मा का तेज कहाँ है और उसको धारण करके हम तेजस्वी कैसे बन सकते हैं? जहाँ शक्ति है वहाँ तेज है। संसार की सब शक्तियाँ – जल, वायु, अग्नि, विद्युत् परमात्मा के तेज को दर्शा रही हैं। पाश्चात्य लोगों ने इन शक्तियों का निरन्तर

ध्यान करते हुए इनको अभ्युदय-सिद्धि का साधन बना लिया है। वर्तमान सभ्यता के बड़े बड़े कार्य्य इन्हीं शक्तियों द्वारा हो रहे हैं। रेलगाड़ी, तार, जहाज़, कल-कारख़ाने, वायुयान, इत्यादि सब चीज़ें इन्हीं शक्तियों के द्वारा मनुष्य को लाभ पहुँचा रहे हैं।

हम परमात्मा के तेज को तभी प्राप्त कर सकेंगे जब इन शक्तियों को अपने वश में कर लेंगे। परन्तु इतना ही पर्य्याप्त नहीं। ईश्वर हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग पर चलाए। शक्ति प्राप्त हो जाने पर यदि हमारी बुद्धि हमें सन्मार्ग पर नहीं ले जाती तो उस शक्ति से हम संसार की भलाई के स्थान पर बुराई कर बैठते हैं। वास्तव में बुद्धि ही एक ऐसी वस्तु है जो शक्ति को उपयोगी बना सकती है। आज सभ्य संसार ने प्रकृति की शक्तियों पर शासन पा लिया है, परन्तु बुद्धि को सन्मार्ग पर न चला कर उन

शक्तियों से एक जाति दूसरी जाति को हानि पहुँचा रही है। इसका उदाहरण पिछले महा-युद्ध में भली प्रकार मिल चुका है।

ईश्वरीय शक्तियों को प्राप्त करके हम अपने तेज को बढ़ाएँ और ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह महान् शक्ति हमारी बुद्धियों को सदैव सन्मार्ग पर चलाती रहे। इसी में हमारा कल्याण है।

आर्य्यसमाज के नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिएँ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सब से प्रीतिपूर्वक धर्म्मानुसार यथायोग्य बरतना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

नियमों की विशेषता

आर्यसमाज के नियमों पर जब हम दृष्टि डालते हैं तो हम अनुभव करते हैं कि यह समाज आस्तिक समाज है। ईश्वर को सृष्टि का रचने वाला मानता है। संसार को एक बड़ा विस्तृत कुटुम्ब स्वीकार करता है। मनुष्य मात्र को आपस में भाई मानता है। ईश्वर ने सृष्टि की रचना के पीछे जो ज्ञान मनुष्यों को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए दिया उसको आर्यसमाज वेद कहता है। 'वेद' का अर्थ ही ज्ञान है।

इस संसार में रहते हुए मनुष्य अपने जीवन में तीन प्रकार के कर्त्तव्यों को पालन करना चाहता है। पहला ईश्वर के प्रति, दूसरा अपने प्रति, तीसरा अन्यों के प्रति। आर्य-

समाज के नियमों के अन्तर्गत इन तीनों कर्त्तव्यों का विधान है। पहले और दूसरे नियम में मनुष्य के उस कर्तव्य का विधान है जो उसे ईश्वर के प्रति पूरा करना चाहिए। इन दोनों नियमों में ईश्वर का स्वरूप वर्णन करते हुए यह बताया है कि एक-मात्र ईश्वर और ईश्वर की ही उपासना करनी चाहिए।

आर्यसमाज के ३रे, ४थे, ५वें नियम में उन कर्तव्यों का विधान है जो मनुष्य को अपने प्रति पूरे करने चाहिएँ, अर्थात् सत्य ज्ञान (वेद) का प्राप्त करना, उसको दूसरों तक पहुँचाना, असत्य का त्याग करना तथा हर एक काम विवेक-पूर्वक, सत्यासत्य का विचार करके करना।

अन्त के पाँच नियमों में उन कर्तव्यों का विधान है जो मनुष्यों को अन्यों के प्रति पूरे करने चाहिएँ। अर्थात् मनुष्यमात्र की

भलाई करना, विद्या का विस्तार करना, अपनी उन्नति के साथ ही दूसरों की उन्नति का भी विचार रखना तथा समाज के नियमों का सदा पाबन्द रहना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यसमाज के नियम यद्यपि संख्या में केवल दस हैं, परन्तु वे व्यक्ति और समाज को अधिक से अधिक उन्नत बनाने तथा संगठन में रखने के लिए पर्याप्त हैं। तुम जितना उन पर विचार करोगे उतना ही तुम्हें उनके बनाने वाले की बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता का बोध होगा।

दूसरा उपदेश

वैदिक प्रार्थना की विशेषता

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ।
एवंत्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

इस लोक में अपने कर्तव्य कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। यही तुम्हारा मार्ग है, इससे दूसरा कोई मार्ग नहीं। कर्तव्य पालन करने से मनुष्य दोषों में नहीं फँसता।

सब धर्मों के मानने वाले प्रार्थना करते हैं। मन्दिर, मसजिद, गिरजे में जाकर अपने अपने धर्म ग्रन्थों के अनुसार ईश्वर के सामने सिर झुकाते हैं और जो चाहते हैं उससे माँगते हैं। यह माँगना, यदि केवल माँगना ही है, तो भिखमंगों का माँगना है। वेद भी हमें प्रार्थना करने की आज्ञा देता है, परन्तु माँगने के साथ प्राप्ति के लिये प्रयत्न आवश्यक ठहराता है।

प्रार्थना का अर्थ तो इतना ही है कि हम अपनी हृदय की अभिलाषा ईश्वर के सन्मुख प्रकट करें, पर उस अभिलाषा की पूर्ति के लिए जो कर्तव्य कर्म है, उसको जब तक हम न करेंगे, हमारी प्रार्थना पूर्ण न होगी।

वेद ने कर्तव्य करते हुए सौ वर्ष तक जीने की आज्ञा दी है। और इसी को सच्चा मार्ग बताया है, क्योंकि कर्तव्य मार्ग पर चलनेवाले दोषों में नहीं फँसते। इसलिए हमारी प्रार्थना सदा कर्म-परायण प्रार्थना होनी चाहिए। कर्म-शून्य प्रार्थना केवल गिड़गिड़ाना-मात्र होती है। माता से मुँह-माँगी वस्तु पाने के लिए जब बच्चा प्रयत्न करता हुआ दिखाई देता है तो उसकी माता प्रसन्न होकर उसकी इच्छा शीघ्र पूर्ण करती है।

इसी प्रकार ईश्वर भी जब हमको कर्म करते, पुरुषार्थ करते, पसीना बहाते देखते हैं तो

हमारे उत्साह को बढ़ाते हैं, हमारी इच्छा पूर्ण करते हैं।

हमारी प्रार्थना की विशेषताएं—

१—प्रार्थना से पूर्व और उसके पीछे कर्म करते रहना आवश्यक है।

२—प्रार्थना का तात्पर्य्य हृदय की अभिलाषा को प्रकट करना होता है।

३—वह अभिलाषा पूर्ण तभी होती है जब हम कर्म द्वारा अपने आपको अधिकारी बना लेते हैं।

४—प्रार्थना-शील जीवन कर्म-शील जीवन का दूसरा नाम है।

तेरी मृदुलता

तेरी मृदुलता मेरी ढिठाई,
भला इनमें किसकी करूँ मैं बड़ाई ?
बहे नित्य तेरा पवन प्राणदाता,
मधुर लोरियाँ जिसने पत्तों में गाईं। तेरी०
बहें नित्य झरने, बहें नित्य नदियाँ,
कहीं मेघ ने आन झड़ियाँ लगाईं। तेरी०
सदा अन्न-भण्डार तेरे भरे हैं,
कहीं खेतियाँ हँस रहीं लहलहाई। तेरी०
उषा और सन्ध्या वही दिव्य लाली,
लिये थाल में नित्य देतीं दिखाई। तेरी०
फँसा पाप के कीच में हूँ मैं, फिर भी
मुझे हाय लज्जा तनिक भी न आई। तेरी०

—

तीसरा उपदेश

कल्याण का मार्ग

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ॥

सूर्य और चन्द्र के समान हम सब स्वयं उत्तम मार्ग पर चलेंगे। दानी, ज्ञानी और हिंसा न करने वाले सज्जनों के साथ चलेंगे।

संसार में सब लोग कल्याण-मार्ग पर चलना चाहते हैं, परन्तु सब लोग उस मार्ग पर चलते दिखाई नहीं देते। इसका कारण यह है कि वे यह नहीं जानते कि कौन सा मार्ग कल्याण-मार्ग है।

सूर्य चन्द्र जिस प्रकार नियमानुसार चलकर संसार का कल्याण कर रहे हैं, उसी प्रकार जो लोग नियमों के अधीन रहते हैं, उच्छृंखलता

नहीं दिखाते, एकरस रह कर कर्तव्य-पथ से नहीं हटते, वे भी संसार का कल्याण करते हैं। अतः कल्याण-मार्ग की पहली सीढ़ी नियमों पर चलना है।

कल्याण-मार्ग की दूसरी सीढ़ी अच्छी संगत को प्राप्त करना है। हम अकेले रह कर बड़े बड़े कार्य्यों का सम्पादन नहीं कर सकते। उसके लिए हमें दूसरों की सहायता चाहिए। पाश्चात्य देशों में सहयोग-समितियों (Co-operative societies) का नियम चल रहा है। उसका तात्पर्य यही है कि जो कार्य्य एक मनुष्य नहीं कर सकता, उसको करने के लिए कई लोग मिल कर अपनी शक्ति तथा सम्पत्ति लगाते हैं।

वेद भी सहयोग की शिक्षा देता है। परन्तु ऐसे आदमियों का सहयोग जो दानी, ज्ञानी और अहिंसक हों। जब ऐसे सज्जन मिलकर कार्य्य करेंगे तो संसार का कितना बड़ा कल्याण

सिद्ध होगा ! कल्याण-मार्ग की यह दो सीढ़ियाँ हैं। इन पर चढ़ने का सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए।

—

आर्यसमाज तथा उसका संगठन

आर्य शब्द का अर्थ श्रेष्ठ या भला आदमी है। और समाज का अर्थ सभा या सङ्घ है। इसलिए आर्यसमाज का अर्थ भले आदमियों का सङ्घ समझना चाहिए।

पहले पहल आर्यसमाज की स्थापना महर्षि दयानन्द ने चैत सुदी ५ सम्वत् १९३२ वि० में बम्बई में की थी। इसके पीछे भारतवर्ष के सब बड़े बड़े नगरों अथवा ग्रामों में समाजें खुल गईं। इस समय समाजों की संख्या लगभग दो हज़ार है।

स्वामी दयानन्द महाराज ने आर्यसमाज के दस नियम बनाए इन नियमों को मान कर तथा इन के अनुकूल चल कर लोग आर्यसमाज के सभासद रह सकते हैं। जिस

स्थान पर कम से कम दस व्यक्ति आर्यसमाज के नियमों को पालने वाले इकट्ठे हो जाते हैं वहां आर्यसमाज स्थापित हो जाता है। प्रान्त की सब आर्यसमाजें एक प्रतिनिधि-सभा बनाती हैं जिस को प्रान्तिक आर्य प्रतिनिधि-सभा कहते हैं। इस सभा के शासन के अन्दर प्रान्त की सभी समाजें रहती हैं। यह सभा उपदेशक रख कर अपने प्रान्त में वैदिक धर्म का प्रचार करवाती है। ऐसी प्रान्तिक सभायें लगभग भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में स्थापित हो चुकी हैं। सभी प्रान्तिक सभाओं के ऊपर आर्य्य सार्वदेशिक सभा का शासन है। इस सभा का केन्द्र देहली में है। भारतवर्ष के बाहर अन्य देशों में भी जो आर्यसमाजें हैं वे सब सार्वदेशिक सभा के अधीन अपना कार्य्य करती हैं। आर्यसमाज का संगठन इस प्रकार चल रहा है।

चौथा उपदेश

सात मर्यादाएं

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षु-
स्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।

ज्ञानी लोगों ने सभ्य समाज की सात मर्यादाएं बताई हैं, उन में से एक का भी जो उल्लंघन करता है, वह पतित हो जाता है ।

जिस समाज या जाति में तुम रहते हो, उसकी रक्षा के लिए यत्न करना हम सब का धर्म है । यह रक्षा नियमों द्वारा की जाती है । नियम दो प्रकार के होते हैं । एक वे जिन्हें सामाजिक नियम कहते हैं । उनका पालन समाज या बिरादरी करवाती है । दूसरे वे जिन्हें राजनीतिक नियम कहते हैं । उनका पालन राष्ट्र करवाते हैं । नियमों के उल्लंघन

करने वालों को समाज अथवा राष्ट्र दोनों दण्ड देते हैं।

वेद जिन सात नियमों का ज़िक्र करता है, वे ज्ञानी लोगों ने स्थिर किये हैं और उन के उल्लंघन करने वाले पतित हो जाते हैं। वे नियम ये हैं—

१—चोरी न करना, दूसरों का धन अपहरण न करना। यदि समाज के व्यक्ति इस मर्यादा का पालन न करें तो समाज में कोलाहल मच जावे। कोई किसी की सम्पत्ति का सम्मान न करे। जिसका जी चाहे दूसरों के धन का अपहरण कर ले। अरक्षा का भाव सर्वत्र फैल जावे।

२—व्यभिचार न करना। दूसरों की माँ बहन का वैसा ही आदर करना, जैसे अपनी माँ बहन का। इस मर्यादा के उल्लंघन से सर्वत्र चरित्र-हीनता फैल जाती है।

३—ज्ञान के प्रचार में बाधा न डालना। मनुष्य-समाज की उन्नति के लिए ज्ञान की सबसे ज़्यादा आवश्यकता होती है। जो लोग ज्ञान के प्रचार में सहायता देते हैं, वे समाज-सुधारक कहलाते हैं। जो इस प्रचार में बाधा डालते हैं वे समाज के शत्रु हैं।

४—विश्वासघात न करना। धोखेबाज़ी, बेईमानी से समाज की उन्नति रुक जाती है। विश्वासघात करने वाले व्यक्ति न स्वयं फलते-फूलते हैं, और न दूसरों को फलने-फूलने देते हैं।

५—शराब न पीना। नशे का सेवन करने वाले व्यक्ति समाज में चरित्र का आदर्श बहुत नीचा बना देते हैं। भाँग, चरस, अफ़ीम, शराब सब प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन छोड़ देना चाहिए।

६—प्रतिज्ञा-भंग न करना। प्रतिज्ञा-भंग करने से भी समाज में शिथिलता आती है। लोगों में एक दूसरे पर विश्वास नहीं जमता। स्वार्थ की मात्रा बढ़ जाती है।

७—असत्य-भाषण न करना। झूठ बोलने से मनुष्य पहले अपने सन्मान को खो बैठता है, फिर दूसरों के सन्मान का अपहरण करता है। इस प्रकार झूठ बोलने वाले सामाजिक जीवन को बड़ी हानि पहुँचाते हैं।

आर्यसमाज का काम

पिछले साठ वर्ष से, जब से आर्यसमाज स्थापित हुआ है, इसका कार्य दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा है। यद्यपि आर्यसमाज का काम भारतवर्ष में आरम्भ हुआ था, तथापि इसका विस्तार इस समय भारतवर्ष से बाहर भी हो रहा है। पिछली मनुष्य-गणना के अनुसार भारतवर्ष में आर्य-सभासदों की संख्या दस लाख के लगभग थी, परन्तु आर्य-समाज के साथ सहानुभूति रखने वाले तथा उन आर्यों की संख्या जो समाज के नियम पूर्वक सभासद नहीं बने और भी कई लाखों तक पहुँच चुकी है।

आर्यसमाज का सबसे बड़ा कार्य इस देश में शिक्षा-प्रचार का हुआ है। इस समय

आर्यसमाज के अधीन समस्त भारतवर्ष में १२ कालेज, २०० हाई स्कूल १५० अंग्रेज़ी मिडिल स्कूल, प्राइमरी स्कूल और १४२ रात्रि-स्कूल, २८ गुरुकुल पांच कन्या-गुरुकुल, दो कन्या कालेज, चार कन्या हाई स्कूल हैं। इस प्रकार छोटे बड़े सब मिला कर लगभग ६००० विद्यालय हैं जिन में एक लाख से अधिक विद्यार्थी पढ़ते हैं। और इन पर बीस लाख से अधिक का वार्षिक व्यय होता है। इन विद्यालयों के भवनों की लागत एक लाख से अधिक रुपये की है। संस्कृत पाठ-शालाओं तथा कन्या-पाठशालाओं की संख्या भी बहुत बड़ी है।

आर्यसमाज का काम एक और दृष्टि से भी बड़ा महत्त्व रखता है। इसने स्त्री जाति की गिरी हुई दशा को बहुत उन्नत किया है। स्त्रियों को जीवन के वे सब अधिकार प्रदान

किये हैं जो पुरुषों को प्राप्त हैं। विधवाओं की दशा को सुधारने के लिए स्थान २ पर विधवाश्रम बनाए हैं और बाल-विधवाओं के विवाह की प्रथा चलाई है। देश के अनाथ बच्चों की रक्षा के लिए अनाथालय बना कर उनकी परवरिश का प्रबन्ध किया है। देश की ग़रीबी को दूर करने के लिए कई व्यवसायों की शिक्षा का प्रबन्ध किया है। इस कार्य्य के लिए आर्यसमाज के आयुर्वेदिक कालेज अच्छा काम कर रहे हैं।

आर्यसमाज के कार्य का एक दूसरा पहलू भी है। वह यह है कि इसने भारतवर्ष में राष्ट्र-उन्नति का भी बहुत काम किया है। शिक्षा-प्रचार के ज़ोर से उन कुरीतियों को दूर करने की चेष्टा की है जो राष्ट्र-उन्नति के मार्ग में बाधक सिद्ध हो रहीं थी। उन मिथ्या-विश्वासों, विचारों तथा प्रथाओं को दूर किया



है जो सामाजिक उन्नति को रोक रही थी। आर्य-समाज ने देश के बच्चों को स्वाभिमान तथा स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया है। अपने लिए स्वयं विचार करना, अपने चरित्र की स्वयं रक्षा करना, अपने भाग्य को स्वयं बनाना इत्यादि अमूल्य पाठ पढ़ाए हैं।

दयानन्द के आगमन से पूर्व इस देश के पढ़े लिखे लोग विशेष करके हिन्दू समाज के नवयुवक दूसरी जातियों के पठित व्यक्तियों के सामने अपना सिर ऊँचा नहीं कर सकते थे। पग पग पर उन्हें अपने धार्मिक तथा सामाजिक प्रचलित विश्वासों के कारण शर्मिन्दा होकर सिर नीचा कर लेना होता था। पर आज दयानन्द तथा आर्यसमाज की कृपा से सभ्य संसार के सामने गर्व से हम अपना सिर ऊँचा करते हें और कहते हैं कि हमारा धर्म हमारा देश और हमारी जाति

संसार में बहुत ऊँचा स्थान रखती है। वेद की संस्कृति संसार की आदि-संस्कृति है। इसी के अनादि स्रोत से संसार की अन्य जातियों ने अपने आप को उपकृत किया है।

जिस दृष्टि से आर्यसमाज के काम को देखा जाय उसका महत्त्व ही प्रकट होता है। तुम्हारे अध्यापक विस्तार-पूर्वक इस विषय को तुम्हें बतावेंगे।

—

छठा उपदेश

पापों को फटकार बताओ

परोपेहि मनस्पाप ! किमशस्तानि शंससि ?
परेहि न त्वा कामये, वृक्षान्वनानि संचर,
गृहेषु गोषु मे मनः ।

जो तुम से झगड़ते हैं, या तुम को नुकसान पहुँचाते हैं, तुम उन को फटकारते हो और कहते हो । ऐसा करने पर वे भाग जाते हैं और तुम उनसे छुटकारा पाते हो ।

ठीक इसी प्रकार यदि तुम अपने सन्मुख प्रलोभनों या पापों को आह्वान करके फटकार बताओ तो वे तुम से दूर भाग जायँगे और तुम उनके आक्रमण से बच जाओगे ।

ऊपर के वेद-मन्त्र में हम क्या पढ़ते हैं ? "ऐ मन के पाप, मुझ से दूर भाग जा !

निन्दा-योग्य बातों की तुम क्यों प्रशंसा करते हो ? मैं तुम्हें नहीं चाहता। जाओ, वनों में और जंगलों में। मैं गृह के कर्तव्यों में तथा लोक-सेवा में लगा हुआ हूँ (तुम्हारी बातों के सुनने को मुझे समय नहीं है)।"

ये कैसे सुन्दर विचार हैं ? प्रलोभनों को इस प्रकार फटकार बताने वाले वीर बालक तथा बालिकाएँ बनो। जब तुम्हारे घर में चोर घुस आता है और तुमको मालूम हो जाता है कि वह चोर है, तो तुम उसको चोर कह कर पुकारते और ललकारते हो। चोर तुम्हारी डाँट सुनकर भाग जाता है। इसी प्रकार जब हम अपने पापों को सम्बोधन करके उनको फटकार बताते हैं तो वे हमारा पीछा छोड़ देते हैं।

डाँट-डपट करने के लिए हिम्मत चाहिए। पापों के साथ जो संग्राम करने को तैयार

रहते हैं, उन्हीं से पाप डरते हैं। जो प्रलोभनों के सन्मुख, उनकी चिकनी-चुपड़ी बातें सुन, अपना सिर झुका हार मान लेते हैं, वे पापों के अधीन होकर सदा के लिए अपना सन्मान खो बैठते हैं। इसलिए निर्भय होकर पापों, प्रलोभनों का सामना करो और उनको फटकार बताते हुए उनको अपने से दूर रखो।

अध्यापक के लिए:—इस पाठ के आधार पर बच्चों को जीवन-संग्राम में योद्धा बनने का उपदेश दीजिये। मन के पापों का जीतना, उनपर विजय पाना भी उतना ही आवश्यक है जीतना रणक्षेत्र में उतर कर शत्रुओं पर विजय पाना। इसके उदाहरण देकर बच्चों को समझाइए।

प्रार्थना

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥
दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥

इहचेदवेदीदथ सत्यमस्ति
न चेदिहावेदीन् महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश् छिद्यन्ते सर्वसंशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ५
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥

सातवाँ उपदेश

ऊँचा आदर्श

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।
आप्नुहि श्रेयांसमतिसमंक्राम ॥

तू वीर्यवान है, तेजस्वी है, आत्मशक्ति वाला है, तू स्वयं तेजरूप है। इसलिए अपने जैसों से आगे बढ़ कर कल्याण प्राप्त कर।

मनुष्य जैसा सोचता है वैसा बन जाता है। कमज़ोर विचार कमज़ोरी पैदा करते हैं। सबल विचार बल को बढ़ाते हैं। जो मातायें झूठी कल्पना करके, मिथ्या चीज़ों का भय दिखा कर अपने बच्चों को डराती हैं, वे उनको सदा के लिए कमज़ोर बना लेती हैं। विपरीत इसके जो मातायें बचपन से ही बच्चों के उत्साह को बढ़ाती हैं और उनको शेर, वीर, बहादुर और नर-पुंगव कह कर पुकारती हैं, उनकी सन्तान

आगे चल कर देश, जाति और धर्म की सेवा में बड़े बड़े कार्य्य कर दिखाती है।

फ्रांस देश के बच्चे नैपोलियन बनना पसंद करते हैं। जर्मन देश के बच्चे हिन्डनबर्ग को अपना आदर्श बनाते हैं। इसी प्रकार दूसरे देशों के बच्चे अपने अपने वीर नायकों का अनुकरण करना अपना गौरव समझते हैं। इसी प्रकार हमारे देश के बच्चों के सामने राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, चन्द्रगुप्त, हर्ष, प्रताप, शिवाजी तथा दयानन्द के जीवनादर्श रहने चाहिएं।

वेद तुम को कैसे सुन्दर शब्दों में सम्बोधन करता है। वह कहता है, तुम वीर्यवान हो, तेजस्वी हो, आत्मशक्ति वाले हो। अपने जैसों से आगे बढ़ कर कल्याण प्राप्त करो।

कैसे उत्साह देने वाले वाक्य हैं! कौन बालक इनको सुनकर उत्साहित न होगा?



छत्रपति शिवाजी

किस के हृदय में इनको सुन कर विद्युत का संचार न होगा ? यह शब्द तुम्हारे मन में स्पर्द्धा पैदा करेंगे। तुम अपने साथियों से आगे बढ़ना चाहोगे। आगे बढ़ना, सदैव आगे बढ़ना, बढ़ कर लोकोपकार करना यह तुम्हारे जीवन का ध्येय बन जावेगा।

अध्यापकों के लिए—सदा बच्चों को, जब उनसे कोई भूल हो जावे, इस वेदमन्त्र के आधार पर सम्बोधन करके चेतावनी दीजिए और कहिए कि तुम वीर्यवान, तेजस्वी, आत्मशक्ति वाले हो, इसलिए अपने जैसों से आगे बढ़ो।

हमारे पुरखा

हमारे पुरखा आर्य कहलाते थे। हम आर्य-सन्तान हैं। कहते हैं कि पहले-पहल आर्य, मध्य एशिया में रहते थे। जहाँ भी पहले-पहल मानवी सृष्टि हुई होगी वहीं से आर्यों का प्रारम्भ हम मानते हैं। आर्य लोग इसके पीछे धीरे धीरे सारे संसार में फैल गये। भिन्न भिन्न देशों में जाने से और भिन्न भिन्न जल-वायु में रहने से उनकी भाषा, वेष, रहन-सहन इत्यादि सब बदलते गए। इसीलिए अब संसार में अनेक जातियों की गणना होने लगी है। परन्तु ये सब जातियां मूल आर्य जाति की अनेक शाखाएँ हैं। मनुष्य-मात्र आपस में सब भाई भाई हैं। संसार एक बड़ा कुटुम्ब है। देश, जाति और मतों के भेद जो अब मनुष्यों में

मिलते हैं, ये सब पीछे के हैं। इन पर ज़्यादा ध्यान न देकर मनुष्य-मात्र को परस्पर प्रेम से रहना तथा जातीय पक्षपात को छोड़ कर व्यवहार करना चाहिए।

कहते हैं, आर्य लोग हमारे देश में उत्तर-पश्चिम से आए थे। बहुत समय तक अफ़गानिस्तान में बसते रहे। उस के पीछे धीरे धीरे आगे बढ़ते गए और अपने धर्म और संस्कृति को फैलाते गए। पहले-पहल उन्होंने उत्तरी भारत को आर्यावर्त का नाम दिया। पीछे से यह देश भारतवर्ष, और अन्त में हिन्दुस्तान कहलाया।

हमारे पुरखा बड़े साहसी तथा परिश्रमी थे। यदि हम ज़रा सा भी सोचें तो हमारे पुरखों का हम पर कितना एहसान दीखता है। हमारी मातृभूमि का गौरव उन्हीं की मेहनत का नतीजा है। भारतवर्ष की हरी भरी भूमि, जिस

पर आज हज़ारों लाखों खेत, बगीचे, तालाब, नहरें, गांव, बस्तियाँ, शहर, रास्ते, किले, कारखाने, राजधानियाँ, बाज़ार और बन्दरगाह विद्यमान हैं, हमारे पुरखों के निरन्तर परिश्रम की याद दिलाती है। इस परोपकार के लिए हमें अपने पुरखों का कृतज्ञ होना चाहिए। उनके गर्व और गौरव को सदा कायम रखना चाहिए। उनकी मान-मर्यादा बनाये रखनी चाहिए। जो धर्म और संस्कृति उनके द्वारा अब तक पहुँची है उसके प्रचार में हमें भरसक प्रयत्न करना चाहिए। अपने समाज संगठन, अपनी प्रथाओं और संस्थाओं, अपने रीति-रिवाजों, अपने जीवन की समूची परिपाटी, जिस पर हमें अभिमान हो सकता है, अपनी भाषा, अपनी बोलचाल और अपनी विचार-शैली जिन पर हमारे पुरखों की छाप लगी हुई है उन सब की सम्भाल हमारा कर्तव्य

है। इन सब के लिए हमें अपने आप को पुरखों का ऋणी मानना चाहिए।

यह ऋण का विचार हमारे देश में बहुत पुराना चला आता है। हम पर देवों, पितरों, ऋषियों और मुनियों का ऋण है। ऋषियों का ऋण हमारे ज्ञान की पूंजी के रूप में है। उस ऋण को चुकाने का उपाय यह है कि हम अपनी सन्तान पर वैसा ही ऋण चढ़ा दें। हमारे वंशज उस ऋण को उतारने के लिए अपने वंशजों को इसी प्रकार ऋणी बनाएंगे और परोपकार के सिलसिले को जारी रखेंगे। इस प्रकार हमारा राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन सदा परोपकार के सूत्र में बँधा रहेगा।

आठवाँ उपदेश

छः बुराइयों को छोड़ो

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृणरक्ष इन्द्र ॥

उल्लू, भेड़िया, कुत्ता, चिड़िया, गरुड़, गीध के समान आचरण मत बनाओ, उनका अनुकरण छोड़ दो।

हम अनुकरण किये बिना नहीं रह सकते। परन्तु जब मनुष्य जानवरों का अनुकरण करने लग जाते हैं तो अधोगति की ओर जाते हैं। अनुकरण सदा गुणों का होना चाहिए, जो हमको उठानेवाले अथवा उन्नत करनेवाले होते हैं।

वेद ने छः जानवरों के आचरण के अनुकरण का निषेध किया है। प्रत्येक जानवर

एक एक बुराई का प्रतिनिधि माना गया है। उस बुराई से बचने का यही उपाय है कि हम उस बुराई में उनका अनुकरण न करें।

उल्लू अन्धकार-प्रिय होता है। उसको प्रकाश से डर लगता है। परन्तु इस अंश में उसका अनुकरण न करके हमें प्रकाश से प्रेम करना चाहिए। ज्ञान का प्रकाश सर्वत्र फैलाना चाहिए। जो बालक ज्ञान प्राप्त करके विद्वान् बनते हैं वे देश और जाति का भला करते हैं।

भेड़िया क्रूरता का प्रतिनिधि है। इस जानवर की क्रूरता प्रसिद्ध है। यह जब अपना शिकार मारता है, तो नोच नोच कर उसके अंग भंग करता है। शेर के समान एक झपटे से नहीं मारता, परन्तु धीरे धीरे क्रूरता-पूर्वक जान लेता है। इसकी क्रूरता का अनु-

करण मत करो। अपने जीवन में क्रूरता का अंश कदापि न आने दो।

कुत्ता जाति-विद्रोह का प्रतिनिधि है। अपनी जाति के साथ द्वेष करता है। दूसरी जाति के लोगों के पैर चूमता है। कुत्ते का इस अंश में अनुकरण छोड़ देना चाहिए। अपनी जाति के साथ सदा स्नेह रखना चाहिए।

चिड़िया में चंचल चित्त-वृत्ति बहुत होती है। इस बुराई से दूर रहना चाहिए। जिस जाति के स्त्री-पुरुषों में संयम के बजाय चंचलता आ जाती है, उस जाति में चरित्र की शिथिलता आ जाती है, और उस जाति का नाश हो जाता है।

गरुड़ अभिमान का प्रतिनिधि है। यह जानवर अपने रंगों पर मस्त हो जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी सजावट में लगे

रहते हैं तथा अपनी आकृति का नाज़ करते हैं, वे गरुड़ के इस दोष का अनुकरण करते हैं।

गीध लालच का प्रतिनिधि है। गीध के समान लालच न करना चाहिए। गीध मुर्दों पर पलता है। इसी तरह कई लोग दीन दुखियों पर दया न कर के उनका माल हज़म कर जाते हैं। अपना पेट भरते हैं, पर दूसरों के कष्ट का साधन बनते हैं। लालच बुरी बला है। इसमें फंस कर लोग अनेक पाप कर बैठते हैं। लालच से सदा बचते रहो।

अध्यापक के लिए—इस सुन्दर वेदमंत्र की व्याख्या में अनुकरण-शक्ति पर आप एक अच्छा व्याख्यान दे सकते हैं। अच्छे बुरे अनुकरण के अनेक उदाहरण देकर बच्चों को अनुकरण-शक्ति से लाभ उठाने की शिक्षा देनी चाहिए। उदाहरण घरेलू हों अथवा पाठशाला के जीवन-व्यवहार में आने वाले, ताकि बच्चों पर उनका गहरा प्रभाव पड़ सके।

आर्य साहित्य

आर्यों का साहित्य बहुत विस्तृत तथा प्राचीन है। वेद संसार के पुस्तकालय में सब से पुरानी पुस्तक है। वेद चार हैं ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। चारों वेदों में चौबीस हज़ार मन्त्र और सात लाख अड़सठ हज़ार शब्द हैं।

ऋगवेद—यह वेद सब से बड़ा है। इस में दस मण्डल हैं और इन मण्डलों में १०२८ सूक्त हैं जिन में १०७०८९ ऋचाएं हैं।

यजुर्वेद—इस वेद में चालीस अध्याय और १९७६ मन्त्र हैं।

सामवेद—इस वेद में १५४३ साम मन्त्र हैं।

अथर्ववेद—इस वेद में बीस काण्ड हैं जिन में ७६० सूक्त और लगभग ६००० ऋचाएं हैं।

हम पहले कह चुके हैं कि वेदरूपी ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को अपनी जीवन-शक्तियों के उन्नत करने के लिए प्राप्त हुआ। यह ज्ञान पहले-पहल चार ऋषियों को प्राप्त हुआ जिन के नाम अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा थे। इन ऋषियों ने वेदों का ज्ञान अन्य ऋषियों और मनुष्यों को उपदेश के रूप में सुनाया, इसीलिए उनको श्रुति भी कहते हैं। यह उपदेश की प्रथा कई पीढ़ियों तक चलती रही। अन्त में इस ज्ञान को पुस्तकों के रूप में लेखबद्ध किया गया। और इस रूप में अब यह हम तक पहुँचा है। वेद की भाषा को देववाणी कहते हैं। संस्कृत इसी देववाणी से निकली है।

ब्राह्मण-ग्रन्थ—ऐतरेय, शतपथ, गोपथ, आदि।

ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषि-मुनियों ने वेदों की व्याख्या की है।

उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद, अर्थवेद ।

वेदाङ्ग—वेदाङ्ग छः हैं—शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, निरुक्त और कल्प ।

उपाङ्ग—वेदों के छः उपाङ्ग हैं जिनको छः दर्शन अथवा छः शास्त्र भी कहते हैं । कपिल मुनि का सांख्य शास्त्र, गौतम मुनि का न्याय शास्त्र, पतञ्जलि मुनि का योग शास्त्र, कणाद मुनि का वैशेषिक शास्त्र, व्यास मुनि का वेदान्त शास्त्र और जैमिनि मुनि का मीमांसा शास्त्र ।

उपनिषद्—ब्रह्म-विद्या सम्बन्धी साहित्य का नाम उपनिषद् है । प्रसिद्ध प्रामाणिक उपनिषद् ११ हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर ।

ईश-विनय

प्रभो ! तू याद आता क्यों नहीं है,
मुझे अपना बनाता क्यों नहीं है ?
तुम्हारी ज्योति जागे सब जगत में,
दिया मेरा जगाता क्यों नहीं है ?
तेरी फुलवारियाँ फूलीं महकतीं,
यह सूखा सर खिलाता क्यों नहीं है ?
बना है हर जगह तेरा बसेरा,
यह उजड़ा घर बसाता क्यों नहीं है ?
मैं व्याकुल हो निहारूँ राह तेरी,
तू अपने को दिखाता क्यों नहीं है ?
समाया है सभी आशाओं में तू,
मेरे दिल में समाता क्यों नहीं है ?
मैं प्यासा हूँ तुझे बैठा पुकारूँ,
सुधा अपनी पिलाता क्यों नहीं है ?

तुझे चिन्ता है जगदीश्वर सभी की,
मेरा फिर ध्यान लाता क्यों नहीं है?
तेरी सुर तान से गूंजें दिशाएं,
ये 'वंशी' फिर बजाता क्यों नहीं है?

आठवाँ उपदेश

सुखी परिवार का स्वरूप

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शांतिवाम् ॥

पुत्र अपने पिता के अनुकूल आचरण करने वाला हो, माता के अनुकूल मन वाला हो। पत्नी अपने पति से सदा मीठी और शान्त वाणी बोले।

वह परिवार सुखी होता है जिसमें सब व्यक्ति एक दूसरे के अनुकूल हों। पुत्र अपने पिता की आज्ञा पालन करने वाले हों तथा उनके आदर्शों के अनुकूल चलने वाले हों, अपनी माता के अनुकूल मन वाले हों। पति-पत्नी का परस्पर सम्बंध भी प्रेम और प्रीति का दर्शाने वाला हो। उनका भाषण मीठा और शांति देने वाला हो।

जिन परिवारों में वेद की इस शिक्षा का अनुसरण नहीं होता, उनमें सदा कलह, क्लेश तथा अनेक प्रकार के दुःख और वैमनस्य बने रहते हैं। अपने परिवारों में सुख, शांति और कल्याण बढ़ाने के लिए हमें परस्पर प्रेम का भाव बढ़ाते रहने चाहिए।

कई घरों में ऐसा देखने में आता है कि बालक-बालिकाएं अपने माता-पिता की आज्ञाओं की अवहेलना करते हैं, उनके कहने-सुनने की परवाह नहीं करते। ऐसे बच्चे बड़े होकर सुखी नहीं होते।

माता-पिता का ऋण उतारना सहल नहीं होता। यदि तुम थोड़ी देर के लिए उन कष्टों का चिन्तन करो, जिन कष्टों को तुम्हारी माता ने तुम्हारे पालन-पोषण में सहन किया था तो अवश्य तुम्हें रोमांच हो उठेगा। माता का बदला कौन चुका सकता है? इस प्रकार

अपने पिता के उपकार को भी न भूलो। उनके प्रति कृतज्ञ होते हुए अपने परिवार में सदा सुख की वृद्धि करो। अपने गृह को अपने मृदु व्यवहार से स्वर्गधाम बनाओ।

याद रखो, परिवारों से मिल कर समाज तथा राष्ट्र का निर्माण होता है। सुखी परिवारों से ही सुखी समाज तथा सुखी राष्ट्र बनते हैं। अतः वेद ने सुखी परिवार का जो स्वरूप तुम्हें बताया है अपने परिवार को वैसा बनाओ।



अध्यापक के लिए:—एक सुखी परिवार का चित्र खींचिये। इतिहास में रामायण की प्रसिद्ध गाथा सुना कर दशरथ के परिवार में सुख और दुःख के अंशों पर प्रकाश डालिये। बच्चों का ध्यान रोज़मर्रा की उन बातों की ओर खींचिये जिनसे उनका घरेलू जीवन सुखी बन सकता है।

नवाँ उपदेश

ईश्वर एक है, एक ही है

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ।
य एतं देवमेकवृतं वेद ॥

उस परमात्मा को दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, सातवाँ, आठवाँ, नवाँ या दसवाँ, नहीं कह सकते । वह अकेला, एक ही है ।

ईश्वर की एकता जिस प्रकार इस वेद-मन्त्र में स्पष्ट रूप से प्रकट की गई है, उस प्रकार किसी दूसरे धर्म-ग्रन्थ में नहीं बताई गई । मुसलमान भी ईश्वर की एकता पर ज़ोर देते हैं । ईसाई भी एकता का प्रचार करते हैं । आज सभ्य संसार में प्रायः सभी आस्तिक ईश्वर की एकता का ही प्रचार करते हैं ।

परन्तु हमारे हिन्दू भाई वेद का इस शिक्षा को भूल गये हैं। वे एक के स्थान पर बहुत देवता मानने लग गये हैं। यदि ईश्वर को अनेक नामों से चिन्तन किया जावे तो कोई हानि की बात नहीं, पर अनेक ईश्वर या देवता मानना ठीक नहीं। पहले तो यह विचार बुद्धि द्वारा संगत नहीं होता, दूसरे अनेक मानने में कई हानियाँ होती हैं।

(१) अनेक देवता मानने से मनुष्य-समाज छोटे-छोटे भागों में बँट जाता है। एक देवता के मानने वाला दूसरे देवता के मानने वाले से लड़ता झगड़ता है।

(२) इस लड़ाई झगड़े से देश में कलह फैलता है और लोग एकमत न होकर देश की उन्नति नहीं कर सकते।

(३) एक से अधिक ईश्वर मान कर हम संसार में एक परिवार का चिन्तन नहीं

कर सकते, मनुष्य-मात्र के भ्रातृ-भाव की सिद्धि नहीं हो सकती। यदि हम एक ईश्वर की सन्तान हैं तो संसार को एक बृहत् परिवार मानना होगा।

(४) बहुदेवता-वाद सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक एकता के मार्ग में बाधक है।

—

अध्यापक के लिए:—ईश्वर के अनेक नाम बता कर यह प्रकट कीजिये कि भिन्न भिन्न मतों वाले लोग उसको भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं और पूजा करते हैं। परन्तु ईश्वर एक है और मनुष्य-मात्र उसकी सन्तान है। ऐसी दशा में हिन्दू, मुसलमान, आर्य, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध आदि सब धर्मों के मानने वाले आपस में भाई-भाई हैं और किसी को किसी से द्वेष न करना चाहिए।

बालक मूलशंकर (१)

(स्वर्गीय पं० घासीराम जी एम्० ए० लिखित)

वंश और जन्म

भारतवर्ष के पश्चिम में एक देश है जिसे गुजरात कहते हैं। उसी का एक भाग काठियावाड़ है, जिसमें बहुत से छोटे छोटे रजवाड़े हैं, जिनके शासक ठाकुर कहलाते हैं। इनमें से एक राज्य मोरवी है। उसमें एक क़स्बा टङ्कारा है। जिस समय की हम कथा कह रहे हैं उस समय वहाँ एक 'जमेदार' रहते थे जो सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। उन दिनों टङ्कारा के इलाके को मोरवी के ठाकुर ने एक मराठा सेठ के पास गिरवी रख छोड़ा था और उस सेठ की ओर से ही उसका सब प्रबन्ध होता था, जिसके लिए 'जमेदार' नियत थे। आजकल का भाषा में 'जमेदार' को 'तहसीलदार' कहना

चाहिए। टङ्कारे के उक्त जमेदार का नाम था करसनजी लालजी तिवाड़ी। गुजरात में मनुष्यों के दोहरे नाम होते हैं—पहला नाम अपना, दूसरा पिता का। इसलिए करसनजी जमेदार का नाम और लालजी उनके पिता का नाम था।

संवत् १८८१ विक्रमीय में करसनजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम मूलशंकर करसनजी रखा गया। माता-पिता उसे प्यार में मूलजी कहा करते थे। मूलशंकर हमें भी बहुत प्यारा है, इसलिए हम भी उस बालक को मूलजी ही कहेंगे।

शिक्षा का आरम्भ

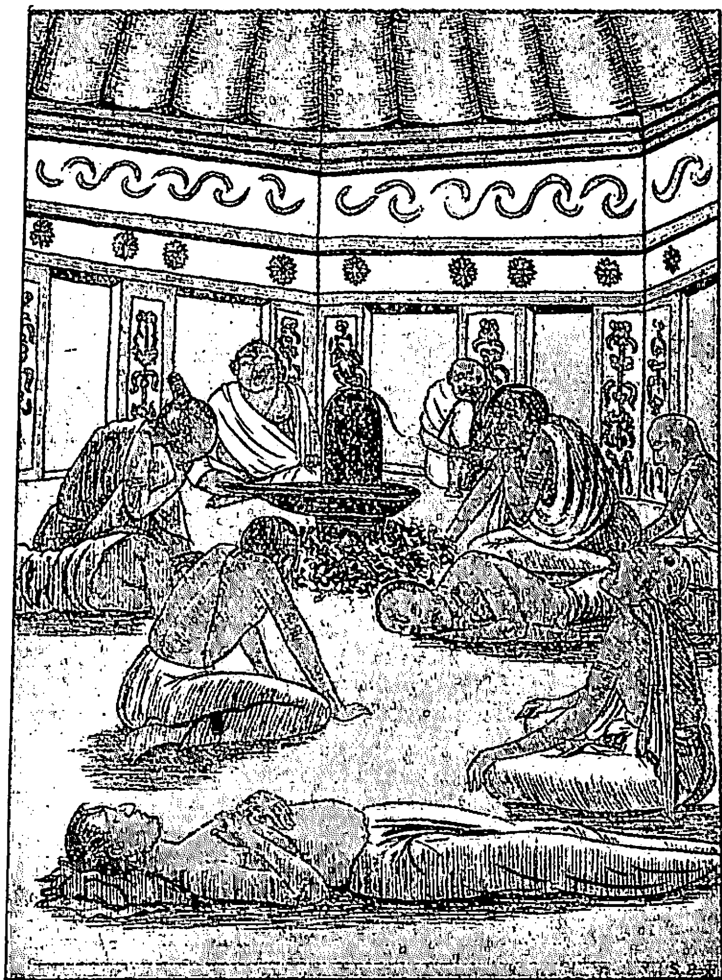
मूलजी के पिता थे तो सामवेदी, परन्तु शिवजी के भक्त होने से यजुर्वेद को बहुत मानते थे। पाँच वर्ष की आयु में मूलजी को पढ़ने बिठा दिया गया। वह था बुद्धि का तेज़, थोड़े ही दिनों में बहुत से वेद के मन्त्र और संस्कृत

के श्लोक कण्ठस्थ कर लिये। आठवें वर्ष मूलजी का जनेऊ हुआ। उसके पिता उसे शिवजी का पक्का भक्त बनाने का यत्न करने लगे। वे उसे शिवजी की पूजा का फल बताते, शिवजी की कथा सुनाते और जहाँ कहीं शिव-पुराण की कथा होती अपने साथ ले जाते।

गुजरात में शिवरात्रि का व्रत माघ वदी १४ को होता है। मूलजी १४ वर्ष का हो गया। करसनजी ने शिवरात्रि को मूलजी से व्रत रखने को कहा। मूलजी अपनी माँ की आँखों का तारा था। उसकी माँ ने अपने पति से बहुत कहा कि मूलजी से व्रत न रखा जायगा, परन्तु करसनजी थे कट्टर शिव-भक्त, उन्होंने मूलजी से व्रत रखाकर ही छोड़ा। टंकारा से कुछ दूर शिवजी का एक बहुत बड़ा मन्दिर है, जहां आसपास के शैव उस रात को रात भर शिवजी की पूजा करने के लिए इकट्ठे हुए।

करसनजी भी मूलजी को साथ लेकर वहां पहुँचे। पहले पहर की पूजा तो ठीक हुई। दूसरे पहर की पूजा भी ज्यों त्यों करके लोगों ने पूरी की। उसके पीछे सबको नींद ने आ दबाया, और सबसे पहले यदि कोई सोया तो वह करसनजी ही थे। मूलजी तो बालक था, उसे सबसे पहले नींद आई, परन्तु वह इस डर से कि कहीं सोने से व्रत न टूट जाय आँखों पर पानी के छींटे देकर जागता रहा।

जब सब के सो जाने के कारण मन्दिर में सन्नाटा छा गया तो मूलजी ने देखा कि चूहे अपने बिलों से निकल कर शिवजी की मूर्ति पर दौड़ लगाने और चढ़ावे को खाने लगे। मूलजी सोचने लगा कि इस मूर्ति को तो सारे जगत् का मालिक बताया जाता है, यह क्या बात है जो इससे अपने ऊपर से चूहे भी नहीं हटाये जाते! जब किसी तरह मूलजी का सन्देह नहीं



मूलजी का उद्बोधन

मिटा तो उसने करसनजी को जगाया और जो बात उसके मन में खटक रही थी, उनसे पूछी। अब करसनजी चुप! माथे पर हाथ रख कर सोचने लगे कि यह क्या हुआ! कहाँ १४ वर्ष का बालक और कहाँ यह विकट प्रश्न! उत्तर भी क्या देते, जब ईश्वर की मूर्ति हो ही नहीं सकती तो मूलजी को समझाते भी क्या? ज्यों त्यों करके कुछ उत्तर दिया परन्तु मूलजी ने उसे काट कर रख दिया। फिर तो करसनजी बहुत सटपटाये और झुँझलाये, परन्तु मूलजी जिसके मन में सच की लगन लगी हुई थी उनसे प्रश्न पर प्रश्न करने लगा। करसनजी को चुप होना पड़ा और मूलजी के मन से सदा के लिए मूर्त्ति-पूजा से श्रद्धा बिदा हो गई।

मूलजी ने अपने पिता से घर जाने की आज्ञा माँगी। पिता ने सोचा—अच्छा है, यह

झंझट दूर हो; आज्ञा दे दी और चपरासी को साथ करके मूलजी को घर भेज दिया, परन्तु चलते चलते भी उससे कह दिया कि देखना कुछ खा-पीकर व्रत न तोड़ देना। मूलजी घर पहुँचा, माँ उसका कुम्हलाया चेहरा देखकर समझ गई कि बालक से व्रत नहीं रखा गया और जब उसने खाने को माँगा तो उसने खुशी खुशी दे दिया। दिन निकलते ही करसनजी भी मन्दिर से लौटकर घर पहुंचे और मूलजी के रात में भोजन करने-का हाल सुनकर बहुत बिगड़े। मूलजी के चाचा उसे बहुत प्यार करते थे, उनके कहने-सुनने से करसनजी का क्रोध शान्त हुआ।

——

बालक मूलशंकर (२)

मृत्यु से कैसे बचें ?

मूलजी पहले की तरह पढ़ने-लिखने में लग गया। इसके दो बरस पीछे की बात है, एक रात मूलजी एक नाच देखने गया। वह नाच देख रहा था कि घर से नौकर दौड़ा आया और कहने लगा, जल्दी चलो तुम्हारी बहन को हैज़ा हो गया है। मूलजी घर पहुँचा तो बहन को बेहाल पाया। बहुतेरा इलाज किया, पर कुछ फल न निकला, और थोड़ी देर में वह मर गई। सारे घर में रोना-पीटना मच गया परन्तु मूलजी की आँखो से एक आंसू न निकला। वह एक कोने में खड़ा यह सोचता रहा कि मौत से बचने का भी कोई उपाय है ! लोगों ने समझा कि मूलजी का हृदय कठोर है और इसलिए उसे सबने बुरा-भला कहा।

ज्यों ज्यों दिन बीतते गये मूलजी के मन में मौत से बचने के उपाय ढूँढ़ने की कुरेद बढ़ती रही।

जब वह १६ बरस का हुआ उसके प्यारे चचा भी हैज़े से चल बसे। मरते समय उन्होंने मूलजी को अपने पास बुलाकर प्यार के साथ देखा और चचा-भतीजे फूट फूट कर रोने लगे। चचा की मौत के बाद तो मूलजी का चित्त संसार से बिलकुल ही उचट गया और वह चुपके चुपके लोगों से पूछने लगा कि मनुष्य मौत से कैसे बच सकता है।

घर से भागना

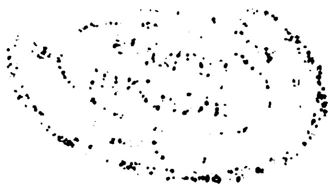
मूलजी के ये विचार माँ-बाप पर भी प्रकट हो गये। उन्होंने सोचा मूलजी का विवाह कर दें, नहीं तो वह किसी दिन घर छोड़ निकल जायगा। उधर मूलजी का यह इरादा था कि चाहे जो हो मैं ब्याह नहीं करूँगा। उसने सोचा, माँ-बाप से काशी जाकर पढ़ने की आज्ञा लूँ

और इस बहाने ब्याह की बला से बच जाऊँ। माँ-बाप लड़के की बातों में कहाँ आने लगे? उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया। अन्त को मूलजी ने उनसे कहा कि अच्छा जो काशी नहीं भेजते तो टंकारे से ३ कोस पर जो अमुक पण्डित रहता है उसी के पास पढ़ने भेज दो। इस पर वे राज़ी हो गये और मूलजी वहाँ जाने लगा। बातों बातों में एक दिन उसके मुँह से निकल गया कि मैं ब्याह कभी न करूँगा। बात करसनजी के कानों तक पहुंच गई और उन्होंने मूलजी की माँ से सलाह कर यही ठहराया कि अब उसके ब्याह में तनिक भी देर न करनी चाहिए। उधर मूलजी ने भी यह ठान ली कि घर छोड़ना पड़े तो पड़े पर ब्याह नहीं करूँगा, और एक दिन दिन-छिपे घरबार, माता-पिता, भाई-बन्धु का मोह छोड़ उसने जङ्गल का रास्ता लिया। यही मूलजी पीछे आकर ऋषि दयानन्द हुए।

डट जावें

वह शक्ति हमें दो दयानिधे !
कर्तव्य मार्ग पर डट जावें ।
पर-सेवा परोपकार में हम,
जग जीवन सुफल बना जावें ॥
हम दीन-दुखी, निबलों, विकलों
के सेवक बन सन्ताप हरें ।
जो हैं अटके, भूले, भटके,
उनको तारें, खुद तर जावें ॥
निज आन मान मर्यादा का प्रभु !
ध्यान रहे अभिमान रहे ।
जिस देश -जाति ने जन्म दिया,
बलिदान उसी पर हो जावें ॥

—:o:—



प्रो॰ सुधाकर जी रचित



धर्मशिक्षा की पोथियाँ

बच्चों की मानसिक शक्तियों के क्रम-विकास का ध्यान रखते हुए ये पोथियाँ लिखी गई हैं। उपदेश ऐसे ढंग से दिए गये हैं जिससे बच्चों में आप से आप विचारने की शक्ति जागे।

उपदेशामृत भाग १	≡)
उपदेशामृत „ २	।)
उपदेशामृत „ ३	।)।
उपदेशामृत „ ४	।-)।।
उपदेशामृत „ ५	।=)।
पुरुषार्थामृत	।-)।।
बाल-दयानन्द-चरित	=)।।
विद्यार्थी-जीवन-रहस्य—श्री नारायणस्वामी जी की कृति	।।=)

युवक-युवतियों के लिए

जीवनामृत	।≡)
आनन्दामृत	।।=)
मनोविज्ञान	२)

शारदामन्दिर लिमिटेड, नई सड़क, दिल्ली